दर्सगाहे कर्बला के चन्द सबक़

आक़ाए शरीअत मौलाना सैय्यद कल्बे आबिद नक़वी साहब (ताबा सराह)

यूँ तो ज़माने में हज़ारों इंकेलाब आए। दुनिया ने सैकड़ों करवटें बदलीं, नहीं मालूम कितनी आज़ाद क़ौमें गुलाम बनीं और कितने गुलामों ने तौक़े गुलामी उतार फेंका। बड़ी–बड़ी ख़ूनी जंगें हुईं, कितनी ही आबादियाँ वीरानों और वीराने बस्तियों में बदल गये। ऐसे भी सुधार करने वाले इस बुराई से भरी दुनिया में आए जिन्होंने बग़ैर तीर चलाए, बग़ैर तलवार को नियाम से निकाले जंजीरों और बेड़ियों का इस्तेक़बाल करके तारीख़ के धारे मोड़ दिये, इन्सानी तरज़े फ़िक्र को बदल दिया।

लेकिन वाक़ेआ–ए–कर्बला अपने अनोखे अन्दाज़, अछूते तरीक़े, बेमिसाल कुर्बानियों और मक़सदे कुर्बानी की अहमियत, अपने बाद छोड़े हुए असरात के लिहाज़ से अब तक लाजवाब रहा है और आगे भी बेमिसाल रहेगा। कर्बला के दिल हिला देने वाले अज़ीम हादसे से पहले मुसलमान चन्द ही साल में अपने रसूल की बताई हुई तालीम को भुला चुके थे।

बराबर जुल्म व ज़्यादती ने उनके एहसासात मुर्दा कर दिये थे रसूल (स0) की आँखें देखे हुए, अली (अ0) की सीरत परखे हुए, हसन (अ0) के हुस्ने अख़लाक़ को आज़माए हुए मुसलमान अब इतने गिर चुके थे, उनकी हिम्मतें इतनी पस्त हो चुकीं थी कि बदअख़लाक़ियों व दरिंदगियों के इन्तिहाई मुज़ाहरे और ख़िलाफते रसूल (स0) के नाम पर होने वाले शर्मनाक तमाशे और तो और सहाबियत का दावा करने वाले अफ़राद तक की रगे हमिय्यत को न हिला सकते थे।

लेकिन कर्बला के चटियल मैदान में जुल्म व सितम का आख़िर वक़्त तक मुक़ाबला करके रगे गर्दन कटाने वालों ने रोब व जुल्म की छायी हुई बदलियों को छाँट दिया और कुफ़्र के फैलाये हुए ग़ुबार को इस तरह हटा दिया कि इस्लाम का आफताब फिर अपनी अगली चमक–दमक के साथ आलम को रौशन व मुनव्वर करने लगा। मरने वाले मर गये लेकिन मुसलमानों के एहसासाते मुर्दा को ज़िन्दा कर गये। उन्होंने अपनी जानें दीं मगर जुराअते मोमिन में जान डाल दी, फिर ज़ालिम की दिखवटी शान व शौकत व इज़्ज़त की परवाह न करते हुए सरे दरबार उसे टोका जाने लगा फिर शौक़े रसन व दार उभर आया। फिर नेज़ों को दिल में जगह देने, तलवारों को गले लगाने, ख़न्जरों को चूमने का शौक़ जाग गया। जैसे कर्बला की जंग सिर्फ कुछ घन्टे में ख़त्म हो गयी लेकिन नहीं मालूम यह लड़ाई किस अन्दाज़ से लड़ी गयी थी कि आज चौदह सदी के बाद भी हर मुफ़क्किर को अपने अन्दाज़े फ़िक्र के लिहाज़ से और हर तालिबेइल्म को अपने ज़ौक़े तलब के मेयार पर बहुत कुछ मिल जाता है। मैं जानता हूँ कि हुसैन (अ0) का मक़सद उस अज़ीम कुर्बानी से एक था और सिर्फ एक यानी इस्लामी तालीमात को उसकी सही बनावट में बाक़ी रखना। मक़सदे रिसालतमॉब (स0) की हिफाज़त करना और इस तरह रिज़ा–ए–इलाही हासिल करना मगर इस मक़सद के लिए (कुदरत के इशारे और इल्हामे रब्बानी) अन्दाज़े जंग कुछ ऐसा अख़्तियार किया

गया कि तन्हा यही वाक़ेआ हर सोंचने समझने वाले के लिए फानूसे हिदायत बन गया। कौन बड़े से बड़ा फलसफी और ज़माने का अल्लामा है जो किसी मुख़्तसर मज़मून नहीं बड़ी से बड़ी किताब में भी तमाम तालीमाते हुसैनी को एक जगह घेर सके। आइये आज हुसैनी दर्सगाह से कुछ दर्स लेने की कोशिश करें।

वलीद के बैअत के मुतालबे पर इमाम मदीना छोड़कर मक्के का सफर करते हैं। शायद इसलिए कि पहाड़ों से घिरा होने की वजह से मक्का बचाव करने की जंग के लिए ज़्यादा ठीक था या इसलिए कि हरमे ख़ुदा होने की वजह से मुसलमान दूर–दराज़ मक़ामात से आते रहते थे लिहाज़ा मुख़्तलिफ इस्लामी शहरों से ताल्लुक़ पैदा करने के ज़्यादा मौक़े थे। लेकिन यह क्या कि जब अतराफे आलम से मुसलमान हज की ग़र्ज़ से जमा हो रहे थे। इमाम हुसैन (अ0) ने मक्का को भी ख़ेरबाद कह दिया। इमाम ने अपने इस तरीक़े से यह सबक़ दिया कि अल्लाह की निशानियों की क्या अज़मत है? जैसे आपने फरमाया हो कि मैं बेपनाह मुसीबत बर्दाश्त कर लूँगा। सफीन–ए–अहले हरम को ज़ुल्म व सितम के थपेड़ों के सुपुर्द कर दूँगा लेकिन हरमे रसूल और हरमे ख़ुदा की अज़मत बर्बाद न होने दूँगा। मक्का से रवाना होते वक़्त इमाम (अ0) के साथ साथियों की अच्छी ख़ासी तादाद थी एक छोटा सा लश्कर साथ था। बज़ाहिर चाहिए था कि रास्ते में जिन–जिन बस्तियों से गुज़रते कामियाबी की उम्मीदें दिलाकर लोगों को साथ लेते जाते, ओहदों की लालच देकर दूर–दूर से बाअसर लोगों को मदद के लिए बुलाते। उस बादशाह का मुक़ाबला था जिसकी हदें सलतनते अरब व अजम को फाँद कर अफरीक़ा और हिन्दुस्तान तक पहुँच चुकीं थीं। मगर इमाम ने आम दुनियातलब सियासतदानों के रास्ते से अलग हटकर जो साथ थे उनमें से भी बहुत सों को ज़ाहिरी फतह और कामयाबी से मायूस करके अपने से जुदा कर दिया ताकि मालूम हो जाए कि जो दुनिया तलबी में साथ होगा वह दिरहम व दीनार से मायूस होकर साथ छोड़ भी देगा और जो मक़सद की अहमियत को महसूस करके साथ होगा वह हर तूफाने बला के मुक़ाबले में चट्टान बन जायेगा।

अभी कुछ ही दूरी तय की थी कि ख़बरे शहादत जनाबे मुस्लिम मिली। अहलेबैत (अ0) की पहली सफे मातम बिछी। इमाम ने मुस्लिम की यतीम बच्ची को बुलाकर कुछ ऐसा मुज़ाहेर–ए–शफ़क़त फरमाया कि बच्ची ने घबराकर पूछा क्यों चचा मेरे बाप की तो ख़ैर है? यह मुज़ाहेर–ए–मुहब्बत तो आप यतीमों से फरमाते हैं। यह बज़ाहिर एक एक छोटा सा वाक़ेआ है लेकिन इससे यह पता चलता है कि इमाम का यतीमों और बे वाली वारिस अफराद से क्या अन्दाज़ था अपने बच्चों के मुक़ाबले में भी, यतीमों से ऐसा अलग अन्दाज़े शफक़त था कि आग़ोश में पाली हुई बच्ची फौरन होशियार हो गयी। मुसलमानों को इमाम के इस तरीक़े से सीखना चाहिए कि वह यतीमों और बे वारिस अफराद से क्या बर्ताव करें। अभी कूफा पहुँचने में चन्द मन्ज़िलें बाक़ी हैं कि हुर का पैग़ाम रास्ता रोक लेता है। फौजे दुश्मन इमाम के मुक़ाबले में डट जाती है। इमाम देखते हैं कि दुश्मन के जितने सिपाही हैं सब प्यास से बेहाल हैं। घोड़ों तक की ज़बानें मुँह से बाहर हैं। किसी मौक़े परस्त सरदारे लश्कर के लिए इससे बढ़कर कौन सा मौक़ा था। एक ही हमले में थके हारे और प्यास से परेशान लश्कर के क़दम उखड़ जाते मगर इमाम ने हुक्म दे दिया

कि जितने प्यासे हैं उन सबको सैराब कर दिया जाए, खुद अपने आप से सिपाहियों को पानी पिलाकर अपनी फौज का पानी का ज़ख़ीरा ख़त्म कर दिया। दुनिया परस्त जो चाहें कहें लेकिन अपने इस अमल से मुअल्लिमे अख़लाक़ ने नर्मी और मुरव्वत और इंसानी हमदर्दी का वह लाजवाब सबक़ दिया है जो क़यामत आने तक याद रहेगा और तारीख़े आलम जिसका जवाब पेश करने से मजबूर रहेगी।

हुसैनी फौज दुश्मन के लश्कर को कोहनियों और हाथों से ढकेलती हुई ज़मीने कर्बला तक पहुँच गयी। लश्कर का पड़ाव पड़ गया। हुसैनी ख़ेमे नहर के किनारे लगा दिये गये दुश्मन का पैग़ाम आता है कि ख़ेमे नहर के किनारे से उखाड़ दिये जाएँ। इस जगह पर सरदारे फौजे यज़ीदी का क़याम होगा। बहादरों के त्योरियों पर बल पड़ गये, शेर बिफ़र गये, सिपाहियों के हाथ क़ब्ज़ों पर गये। लेकिन इमाम (अ0) ने सर झुका कर कहा : अच्छा अगर यही ज़िद है तो हम अपने बच्चों को लेकर तपते रेगिस्तान में क़याम कर लेंगे मगर अपनी तरफ से जंग में पहल न करेंगे। देखने वाले देखें कि इमामे हुसैन (अ0) ने किस सलामत रवी और सुलहजोई का मुज़ाहेरा फरमाया है और यह बताया है कि इन्सान को इम्कान की आख़री हदों तक मार–काट से दामन बचाना चाहिए।

सअद का नहस बेटा कर्बला में सामने आता है। सुलह की बात की शुरुआत होती है। इमाम अपनी तरफ से नर्म से नर्म शर्तें पेश करते हैं। खुद उमरे सअद के से दुश्मन को भी इमाम के सुलह पसन्द रवैय्ये का इब्ने ज़ियाद को अपने भेजे हुए ख़त में इक़रार करना पड़ा। सुल्ह की बात–चीत इब्ने ज़ियाद की हटधर्मी की वजह से नाकाम हुई। दुश्मन की फौज ने 9 मोहर्रम को अस्र के वक़्त इमाम के ख़ेमों की तरफ हमला कर दिया। इमाम (अ0) की ख़्वाहिश पर मुशकिल से एह रात की मोहलत मिली।

इल्मे इमामत से नज़र हटाते हुए भी ज़ाहिरी हालात के लिहाज़ से अब बचने की कोई सूरत न थी दुश्मन की लातादाद फौज ने इमाम के गिन्ती के साथियों को हर तरफ से घेरे में ले लिया था। इस हालत में नतीजा मालूम था। अब तो जितनी भी जल्द जंग ख़त्म हो जाती उतनी ही मुसीबतें कम से कम रहतीं। कम से कम मुजाहिद रात और दिन की सख़्त गर्मी की नाक़ाबिले क़यास शिद्दत से महफ़ूज़ रह जाते लेकिन इमाम एक रात की मोहलत खुदा की इबादत के लिए माँग कर हर मुसलमान ख़ासतौर से मोमनीन को सबक़ देते हैं कि नमाज़ और तिलावते कलाम मजीद का कैसा ज़ौक़ व शौक़ होना चाहिए।

पूरी रात इबादत में गुज़ारने वाले मुजाहिद इमामे वक़्त की इक़्तेदा में तयम्मुम से सहरी का फ़रीज़ा अदा करते हैं। दुश्मन के तीर मुसल्लों पर गिर कर पैग़ामे जंग लाते हैं। बूढ़े जोशे शुजाअत में, जवान और बच्चे जिहाद के शौक़ में बड़ों के साथी बनते हैं, झुकी हुई कमरें पटकों से कस कर बाँधी जाती हैं, सुफ़ूफे जमाअत सफे जंग में बदलती हैं मगर जो मसावात का सबक़ नमाज़ ने दिया था अब भी बाक़ी है। हबशी व आक़ा ग़ुलाम पहलू बपहलू होकर, शाने से शाना मिलाकर दुनिया को मसावात का सबक़ देते हैं।

मुजाहिद ज़ख़्मों पर ज़ख़्म खाकर गिरने लगे इमाम (अ0) ने जिस तरह हाश्मी बच्चों, मासूमों के पाले हुए अकबर व क़ासिम औन व

मुहम्मद के सर ज़ानों पर रखे। इसी तरह गुलामों को भी यह सरफराज़ी हासिल हुई कि रूमी और हब्शी गुलामों ने जन्नत के जवानों के सरदार के ज़ानों पर सर रख कर जान दी।

एक हब्शी गुलाम जो बहादरी में झूमता हुआ आगे बढ़ा, दस्तबस्ता अर्ज़ की। मौला मरने की इजाज़त हो। इमाम ने निगाहे मुहब्बत डालकर फरमाया : ऐ जौन जब तक आराम व राहत थी, हमारे साथ रहे अब क्या ज़रूरत कि हमारी वजह से अपने को मुसीबत में डालो। मैं ख़ुशी से इजाज़त देता हूँ जहाँ चाहे चले जाओ। गुलाम के तेवर बदले, वाह मौला वाह आपकी बदौलत हमेशा तो नेमतों से फाएदा उठाया, आपके दस्तरख़्वान के टुकड़े तोड़ता रहा और मुसीबत के वक़्त साथ छोड़ दूँ। यह गुलाम को दुनिया वालों की निगाह में अपनी ज़िल्लत का एहसास था लिहाज़ा दस्तबस्ता अर्ज़ की। मौला मैं जानता हूँ मेरा ख़ून काला है, जिस्म से बदबू आती है, हसब न नसब पस्त है मगर ख़ुदा की क़सम अपने बदबूदार जिस्म का यही काला ख़ून बनी हाशिम के पाक व पाकीज़ा ख़ून में मिलाकर रहूँगा।

जौन घोड़े से गिरे। इमाम सरहाने गए, दुआ के हाथ बुलन्द किए। मालिक! जौन को अपने रंग की सियाही और जिस्म की बदबू का बहुत एहसास था। पालने वाले! इसके जिस्म की सियाही को नूर से और बदबू को ख़ुश्बू से बदल दे। दुआ–ए–इमाम (अ0) का असर यूँ ज़ाहिर हुआ कि शोहदा–ए–कर्बला में किसी जिस्म में नूर न था बदन में ख़ुश्बू न थी मगर इस बाग़े शहादत में भी मुम्ताज़ तरीक़े पर जौन का जिस्म महक रहा था और नूर का कुब्बा हर निगाह को अपनी तरफ मुतवज्जह कर रहा था।

अस्हाब दरज–ए–शहादत पर फाएज़ हो चुके। अक़रबा भी शहीद हो चुके, अली अकबर मैदाने जंग में बाप को आवाज़ देते हैं। नौजवान फरज़न्द शबीहे पैग़म्बर बूढ़े बाप के सामने दम तोड़ रहा है, बरछी की खटक पहलू बदलवा रही है, फातिमा (स0) का दूध ख़ून बनकर हुसैन (अ0) की निगाह के सामने जारी है ऐसे वक़्त में किस इन्सान के होश व हवास ठीक रह सकते हैं लेकिन जब बहन घबराकर ख़ेमे से निकलीं तो हुसैन (अ0) ने जवान की मैय्यत रख दी। आँसू पूछ डाले, धड़कते दिल को संभाला और ज़ैनब (स0) को अबा का साया करके ख़ेमें में पहुँचाकर मुसलमान औरतों को पर्दे की अहमियत बतायी।

आफताब ढलते–ढलते नुक़ता अस्र पर पहुँचा। इमाम (अ0) मैदाने जंग में अकेले और तन्हा खड़े हैं।

न लश्करे न सिपाहे न कसरतुन नासे
न अकबरे न अली असग़रे न अब्बासे

दाएँ और बाएँ देख कर आवाज़ देते हैं :–

अमा मन नासिरिन यन्सुरना

अमा मन दानत युद्नीना अन्ना

अमा मन मुग़ीसु युग़ीसुना

मौला! क्या अब भी उम्मीद थी कि बदबख़्त लश्कर में कोई हक़ की आवाज़ सुन सकेगा। क्या कुफ्र व जुल्म के सियाह दिल में नूरे हिदायत के आ जाने की भी गुन्जाइश है?

□ □ □